संतसाहित्य एवं मानसिक स्वास्थ्य

संपादक
डॉ. प्रमोद रामकृष्ण कुमावत
डॉ. जयश्री किनारीवाल

संतसाहित्य एवं मानसिक स्वास्थ्य

संपादक
डॉ. प्रमोद रामकृष्ण कुमावत
डॉ. जयश्री किनारीवाल

सं प्र
संकल्प प्रकाशन
कानपुर (उ.प्र.)

पुस्तक में प्रकाशित लेख, लेखकों के अपने विचार हैं।
प्रकाशक, मुद्रक व संपादक का इनसे कोई सरोकार नहीं है।

ISBN : 978-81-951646-0-8

प्रथम संस्करण 2021
© संपादकाधीन

पुस्तक : संतसाहित्य एवं मानसिक स्वास्थ्य

संपादक : डॉ. प्रमोद रामकृष्ण कुमावत, डॉ. जयश्री किनारीवाल

प्रकाशक : **संकल्प प्रकाशन**

1569/14 नई बस्ती बक्तौरीपुरवा, बृहस्पति मन्दिर, नौबस्ता, कानपुर (उ.प्र.)-208 021

दूरभाष : 094555-89663, 070077-49872

Email : sankalpprakashankanpur@gmail.com

वितरक : **समता प्रकाशन**

159/1 वार्ड नं. 12, बजरंगनगर, **रूरा,** कानपुर-देहात
दूरभाष : 9450139012, 9936565601
Email : samataprakashanrura@gmail.com

मूल्य : ₹ 395.00

शब्द-सज्जा : रुद्र ग्राफिक्स, हनुमन्त विहार, नौबस्ता, कानपुर-21

आवरण : गौरव शुक्ल, कानपुर-21

मुद्रण : सार्थक प्रिंटर्स, नौबस्ता, कानपुर-21

जिल्द-सज्जा : तबारक अली, पटकापुर, कानपुर-01

अनुक्रम

1. मानसिक स्वास्थ्य में संतों की भूमिका
   डॉ. विनोद श्रीराम जाधव 13
2. मानव व्यक्तित्व निर्माण में भक्तों एवं संतों की भूमिका
   डॉ. माधुरी गर्ग 21
3. भारतीय संस्कृति और परंपरा में मानसिक स्वास्थ्य
   डॉ. संतोष पवार 33
4. भक्तिमय संत मीरा का जीवन दर्शन
   डॉ. शिल्पा दादाराव जिवरग, डॉ. रमा दुधमांडे 43
5. संतों की भक्ति भावना एवं मानसिक स्वास्थ्य
   डॉ. नागराज उत्तमराव मुळे 46
6. संतसाहित्य की वैश्विक विचारधारा
   राकेश कुमार 50
7. कबीर के साहित्य में मानसिक स्वास्थ्य
   डॉ. विपुला सिंह 57
8. संतसाहित्य की वैश्विक विचारधारा
   डॉ. तुकाराम चाटे 60
9. संतों की वाणी से व्यक्तित्व विकास
   डॉ. शेख शहेनाज अहेमद 66
10. संतों के साहित्य में मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा
    प्रेम कमल उत्तम 73
11. आधुनिक संत एवं मानसिक स्वास्थ्य
    डॉ. शशि गुप्ता 79
12. धार्मिक ग्रन्थों में मानव स्वास्थ्य तथा संतों की अवधारणा
    डॉ. (सुश्री) भावना कमाने, डॉ. अरुण कुमार 87
13. संतसाहित्य की वैश्विक विचारधारा
    स्मिता रजक 94

9.

संतों की वाणी से व्यक्तित्व विकास

डॉ. शेख शहेनाज अहेमद

युग युगान्तर से आध्यात्म और ऋषि मुनियों का जमावणा हमारे भारतीय संस्कृति में रहा है जिसका प्रमाण हमारे देश में आज भी मौजूद है। इसमें किसी प्रकार की कोई शंका नहीं है आदि-अनादि संतों की जो वाणियाँ हैं वह हमारे समाज के भटके हुए व्यक्तियों के लिए एक प्रेरणादायक सूत्र की तरह हमारा सहयोग कर रही हैं। आज भी मठ और आश्रमों में महात्माओं की शिक्षा-दीक्षा का चलन पूर्णरूप से जारी है विशेषकर हमारी भारतीय परंपरा में तो इसका पालन अभी भी नियमित रूप से चल रहा है। संतों ने जो कहा वह आज भी सत्य है और भटकने से रोकने का कार्य उनकी कथनी आज भी निरंतर कर रही है। जिसके कारण प्राणी अपना व्यक्तित्व विकास नियमित करने में सक्षम हो पा रहा है। इसमें काई भी शंका नहीं है। मेरी तो यही कामना है हे संतों! आने-जाने वाली वस्तु मायावी है। जो जन्म लेकर शरीर छोड़ता है वह संसारी जीव है। शास्त्रों में ईश्वर की धारणा है कि वह सर्वज्ञ, सर्वत्रव्याप्त, सर्वशक्तिमान, सर्वरक्षक एवं कृपालु है। इसलिए वह सबका प्रतिपालक ही होगा। वह किसी के लिए क्रूर नहीं बन सकता। जब वह सर्वत्र व्याप्त है तब उसका कहीं आना-जाना भी नहीं बन सकता।

इस विस्तृत संसार में सभी जीव सुख पाना और दुख से छूटना चाहते हैं। सुख पाने के लिए ही सब प्रतिक्षण अपनी-अपनी समझ एवं शक्ति अनुसार प्रयासरत रहते हैं। सुख पाने के लिए मनुष्य रूपी जीव क्या से क्या नहीं करता। परन्तु नित्य-निरंतर प्रयास करते रहने पर भी यहां कोई पूर्णतः सुखी नहीं हो पाता। विभिन्न प्रकार के दुःख जीव के पीछे लगे हैं। संसार में यदि कुछ सुख जैसा भासता भी है तो क्षणिक एवं कल्पित, जो कुछ समय बाद नहीं रहता। जन्म-मरण का दुख तो सबके साथ लगा है, जिससे सब चिंतित रहते हैं। जीव को जन्म-जन्मांतर से जिस परम सुख-आनन्द की तलाश ह, जिसे पाने के बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता, वह उसे खोजने से मिल नहीं पाता। अन्ततः वह जीवनपर्यंत आधि-व्याधि रोगों से ग्रस्त हुआ दुख भोगता मर जाता है। अंतिम में जिस आशा-वासना के साथ जीव शरीर छोड़कर जाता है, उसी

से उसका पुनर्जन्म होता है, पुनर्जन्म पाकर फिर वह दुख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति के लिए यत्न करने लगता है। इस प्रकार जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा हुआ जीव सदैव दुखी रहता है। जन्म-मरणादि के दुख के कारण तथा उससे मुक्त होने की बात उसे समझ नहीं पड़ती। जीव के दुख का मूल कारण उसका अज्ञान है। अज्ञानांधकार में रहते हुए जीव को कुछ भी ठीक नहीं सूझता और वह व्याकुल हुआ मारा-मारा फिरता है। अज्ञान स्थिति में जीव मन-मति के पापाचरण करता है, विभिन्न कर्मों एवं विषय-भोगों में आसक्त रहता है, जिनके परिणामवश वह अशांत-उद्विग्न हुआ भटकता है। अज्ञानी जीव सत्य-असत्य, जड़-चेतन एवं आत्मा-अनात्मा के भेद को नहीं समझ पाता, जिससे वह शरीर एवं संसार को सत्य समझता हुआ प्राणी-पदार्थों के दुखदायी मोह-बंधन में जकड़ा रहता है। अज्ञानजनित मोह एवं भ्रम की स्थिति में जीव स्वयं का, अर्थात् स्वस्वरूप-निजात्मा का विचार नहीं करता, प्रत्युत वह तो स्वयं को ही शरीर समझता हुआ उसी के पालने-'सवांरने तथा मन-इन्द्रियों के विवश हुआ अपने कर्मानुसार चौरासी की नाना योनियों को धारणा करता हुआ बार-बार काल का ग्रास बनता है। यद्यपि जीव अपनी बुद्धि के अनुसार अपने सुख एवं हित के कुछ कर्म-साधन करता है, तथापि वह स्वयं के अज्ञान के कारण परम सुख-शांति एवं कल्याण (मोक्ष) को उपलब्ध नहीं होता।

संतों ने हमे संवेदना का पाठ पढ़ाया, सहानुभूति, प्रेम, धर्म, विश्वास, मानवता की वह परिभाषा पढ़ाई जो आज भी सार्थक है। प्रकृति से खिलवाड करके भौतिकता की चादर ओढ़े मानव को आज उसी प्रकृति ने वो सबक सिखाया कि उसकी आँखें खुल गयी समस्त जीवों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ जीव है, क्योंकि उसके पास सोचने समझने की ताकत है परन्तु फिर भी वह प्रकृति, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे एवं आसपास के वातावरण के बिना निराधार है, उन सबके प्रति सहानुभूति और प्रेम की भावना रखना मनुष्य के लिए आवश्यक है, यही प्रेम, यही सहानुभूति और सदाचार पाठ उस समय के संतों ने हमें पढ़ाया। मानव कल्याण के लिए तो इन संतों ने समस्त हदों को पार कर दिया। उन्होंने महादुखदायी माया-मोह, काम, क्रोध, अभिमान, राग-द्वेष एवं परनिंदा आदि दुर्गुणों को त्यागने और परम सुखदायी सत्य, दया, विनम्रता, अनासक्ति, धैर्य, विचार, विवेक एवं वैराग्य आदि सद्‌गुणों को ग्रहण करने के लिए कहा है। उन्होंने सद्‌गुरू की सेवा-भक्ति एवं विवेकी संतों की सत्संगति का विशेष निर्देश किया। उन्होंने समझाया कि सद्‌गुरू के उपदेशानुसार मन-इन्द्रियों को संयमित करके विधिवत् सहज साधना से अपने पवित्र हृदय में परमतत्व-आत्मा का साक्षात्कार होता है। जिज्ञासुओं एवं मुमुक्षुओं के लिए उनका सीधा उपदेश था- "संसार के हर्ष-शोक को भुलाकर सद्‌गुरू के शब्द-उपदेशों पर विश्वास करके वैसा ही आचरण करों। दया, क्षमा, सत्य, शील एवं विचारादि सद्‌गुणों को

ग्रहण कर अमरत्व को प्राप्त करो। संतों ने मानव के व्यक्तित्व विकास के लिए जो ज्ञान दिया उसमे उन्होने समस्त प्राणी जगत को अपनी वाणी से अवलोकित किया।

"छोड़ गुमान सब मिलसी, ए जो देखत हो जहान।
जात पांत न भांत कोई, एक खान–पान एक गान।।"

भक्तिकालीन साहित्य की सामाजिक विषय वस्तु का यह ऐतिहासिक महत्व है कि वह जीवन की स्वीकृति का साहित्य है, उसमें जनता का हास और उल्लास है, जनता का क्रोध और आवेश है, एक सुखी समाज की आकांक्षा है, उसमे अन्याय व सक्रिय विरोध करने वाले वीरों के चित्र है। इस विषय वस्तु ने दुख के दिनों मे जनता का मनोबल कायम रखा, जीवन मे, उसकी आस्था बनी रहने दी। तात्कालिक समाज जो कि वर्णव्यवस्था से जर्जर और सामाजिक ऊँच–नीच की भावना से आक्रान्त था, ऐसे नाना प्रकार के भेदभाव कर्मकाण्डों मे फँसे भारतीय जीवन में संतों का प्रादुर्भाव मानवता की उदघोषणा की एक अभूतपूर्व घटना थी जिसकी तुलना पुरूषोत्तम अग्रवाल ने यूरोप में हुए 17वी शताब्दी के रेनेसाँ से किया है।

वास्तव मे मानवीय संवेदना के अभाव में दिग्भ्रमित जनता विनाश के कगार पर खड़ी थी। संत कवि परम्परागत मध्यकालीन भारतीय समाज की उपज होते हुए भी रूढ़ियों और सामाजिक संकीर्णताओं एवं मध्यकालीन विडम्बनाओं के प्रभंजक के रूप में उभरे थे। हृदय–परिवर्तन द्वारा सामाजिक सुधार लाने का प्रयत्न इन संतों ने किया। व्यष्टि के माध्यम से समष्टि का उत्थान करने की भावना ने ही इनके परिकल्पित समाज को सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक रूप प्रदान किया। वे शस्त्र एवं शक्ति के बल पर सामाजिक क्रान्ति नहीं लाना चाहते थे बल्कि जनता में मानवीय मूल्यों के प्रति जागरूकता लाकर समाज को बदलना चाहते थे। इन संतों ने एक ऐसे सामासिक समाज की परिकल्पना की थी जिसमें जाति–पाँति, ऊँच–नीच, धनी–निर्धन, धर्म–सम्प्रदाय, स्त्री–पुरूष, शिक्षित–अशिक्षित, स्वामी–सेवक आदि की सभी विषमताएँ लुप्त हो जाएँ। इन संतों ने सब प्रकार के भेद–भाव को नष्ट कर सद्भावनापरक दृष्टि अपनाने पर विशेष बल दिया। युग की नब्ज पहचान कर चलने वाले इन संतों ने वर्ग–विभाजन की कट्टरता, आडम्बरपूर्ण धार्मिक रीतियों एवं मिथ्या जातीय नियमों के विरूद्ध प्रखर स्वर मुखरित किया तथा त्याग, प्रेम, संतोष, सहयोग, सहनशीलता का अमर संदेश सुनाया। जन–कल्याण की भावना से ओत–प्रोत संतों ने जनता के हृदय में छिपी आशाओं और आकांक्षाओं को ही सहज भावभिव्यक्ति प्रदान की थी। संतों की सारग्राहिणी बुद्धि ने यह निष्कर्ष निकाला था कि आवश्यकता से अधिक भौतिक लोभ, धनोपार्जन, यशलिप्सा, पदलिप्सा ने मानव को अमानवीय बना दिया है परन्तु मानव समाज में मानवीयता,

आत्मीयता एवं नैतिकता के उदात्त सिद्धान्तों की कद्र से जमीन स्वर्ग से भी सुन्दर बन सकती है। इस संदर्भ में श्री सुदर्शन सिंह मजीठिया का विचार द्रष्टव्य है। इनकी वाणी एक ऐसे अवसर पर निःसृत हुई, जबकि उसकी अत्यन्त आवश्यकता थी। उनकी वाणी में विश्व–कल्याण का संदेश था। ये विचार हर किसी के लिए भी लागू हो सकते थे। इन संतों ने प्राचीन शाश्वत मूल्यों को जहाँ आत्मसात् किया था वहीं सड़ी–गली सामाजिक मान्यताओं के खिलाफ आवाज उठाकर समाज को उनकी कट्टरता एवं कृत्रिमता से उबारने का स्तुत्य प्रयास किया।

संत साहित्य सामाजिक सुधार का काव्य है उसमें एक उज्ज्वल, प्रगतिशील समाज का स्वरूप है। अनेक व्यक्तियों के समूह का नाम समाज है और यह समाज मानवीय प्रेम तथा आत्मीय संबंधों पर टिका हुआ है। आज समाज में एक कोलाहल है, एक कसक है, एक पीड़ा है, एक तनाव है, एक संघर्ष है और एक द्वन्द्व है। यह वेदना आपस में सामंजस्य न हो पाने के कारण है। एक समाज दूसरे समाज पर छिद्रान्वेषण की निगाह रखता है। दूसरा समाज तीसरे समाज पर कर्तव्यविमुखता या उच्छृंखलता का आरोप–प्रत्यारोप लगाता है और यही कारण है कि समाज में एक भीतरी कलह और असन्तोष बढ़ता जा रहा है। आज सामाजिकता के मापदण्ड बदल गए हैं। न्याय, समता, अनुशासन, परोपकार, दया, संयम और अपरिग्रह अब बेमानी से हो गए हैं, फलतः समाज में विद्रूपता, विसंगति और अराजकता पनप रही है। आज हर ओर से हिंसा की, आतंक की, असत्य की, अन्याय की, अधर्म की, धन–लिप्सा की, संकीर्ण स्वार्थों की, घूसखोरी की, मिलावटी धंधे की ही बू आ रही है। धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, रूढ़ियों और परम्पराओं के नाम पर आपसी वैमनस्य बढ़ रहा है। कुल मिलाकर समस्याओं का जाल समाज में फैलता जा रहा है, जिनमें व्यवस्था, साम्प्रदायिकता, नारी चेतना, शिक्षा, आतंकवाद, भाषा और मद्यपान तथा वेश्यावृत्ति के साथ ही साथ सांस्कृतिक समस्याएँ सामाजिक बन्धुत्व को गहरी चोट कर रही हैं। ये हमारी सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना को पाँवों तले रौंद रही हैं। सर्वधर्म–समभाव आज हमसे विमुख होता जा रहा है, जो हमारी सम्पूर्ण, समस्याओं का मूल समाधान है। इन समस्याओं के लिए जितना मनुष्य दोषी है, उतना ही मनुष्य के द्वारा फैलाया गया प्रदूषण, गन्दी राजनीति, बिकाऊ न्याय–व्यवस्था, अनुशासनहीनता, लोभी और स्वार्थी प्रवृत्ति भी जिम्मेदार है। साहित्य समाज का दर्पण है। सामाजिक जीवन की विविध स्थितियों एवं परिस्थितियों को चित्रित करना ही साहित्य का एकमात्र उद्देश्य है। साहित्य और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य समाज से ही विपुल सामग्री लेकर परिपुष्ट होता है और समाज साहित्य से ही जीवन–महत्व की शिक्षा पाता है।

सभी धर्मों, सिद्धान्तों, विचारों में समन्वय करते हुए संतों ने साम्प्रदायिक सद्भाव की आवश्यकता पर बल दिया है। वे कहते हैं जो अपने को बड़ा कहता है, वह धर्म का मर्म नहीं जानता–

जो आपको समझते सबसे बड़े हैं।
वे धर्म से बहुत दूर अभी खड़े हैं।।

संत–साहित्य की प्रबल धारा ने समाज के ऐसे स्तरों को जगाया जो सबसे पीड़ित थे और संस्कृति से वंचित थे। अछूत और नीच कहलानेवाले लोगों में संतों का जन्म हुआ। इन सब लोगों के लिए न मंदिर में जगह थी, न मस्जिद में। इनका निर्गुणवाद मंदिर–मस्जिद, वेद–पुराण और कुरान के विरूद्ध चुनौती बनकर आया था। वे मंदिर–मस्जिद की सीमाएँ नहीं मानते। भले ही इनका द्वार उनके लिए बंद हो, वे अपने हृदय में साहब का दर्शन कर लेते हैं। संत–साहित्य में भेद–उपभेद होते हुए भी प्रेम–तत्व की समानता है। संतों ने मानव–प्रेम पर ही अधिक जोर दिया है। यह प्रेम–तत्व तुलसी–साहित्य में भी है। किंतु मायावाद संत–साहित्य का सबसे कमजोर पहलू है। इसका ऐतिहासिक कारण है कि उस समय किसी क्रांतिकारी वर्ग के नेतृत्व में देश की सामंत–विरोधी जनता का संगठन नहीं हुआ था। इसीलिए एक कल्पित आंनद, कल्पित साधना द्वारा मनुष्य अपने हृदय को ढाढ़स बँधाता था। संत कवियों ने अपनी वैयक्तिक साधना द्वारा जहाँ अपने जीवन को समुन्नत किया, वहीं लोक–जीवन को भी उदात्तता की ओर अग्रसर करने का पुण्य प्रयास किया। अन्तः और बाह्य रूपों की पवित्रता पर जोर दिया। संतों की इसी लोकवाणी की उर्वरा शक्ति के अन्तस् के निगूढ़ रहस्यों, अनुभूतियों को उभारा और परिव्राजक रूप में साधना–परक मार्गों एवं लोकोन्नयन के संबंध में रचनाएँ प्रस्तुत कीं। विचारों की स्वतंत्रता संत–काव्य की पृष्ठभूमि के केन्द्र में रही है। उन्होंने न तो किसी मत–विशेष, वाद के चक्कर में अपने को बाँधा और ना ही दूसरे को बाँधने का प्रयास किया। उन्होंने परम सत्ता के प्रति आस्थावान भक्ति, पुरूषार्थ और साधनानय सत्य का मार्ग चुना और वे स्वात्मानुभूति कर उसी का उपदेश देते रहे। संत साहित्य के निर्माण का सूत्रपात इन्हीं परिस्थितियों में तथा सर्वसाधारण को तज्जन्य दुष्परिणामों से बचाने के यत्न में ही किया गया है। भौतिक जगत् के द्वन्द्वों, संघर्षों, सन्तापों के बीच एकता, मित्रता, सहिष्णुता संत–काव्य का संदेश रहा है। महासना संतों ने मानव–कल्याण हेतु जो सार्थक और ऊर्जावान् विचार पेश किये हैं, वे समस्त भ्रमित मानवता को असत्य से सत्य की ओर, अँधेरे से उजाले की ओर, बाहर से भीतर की ओर एवं मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने वाले रहे हैं। इसीलिए उन्होंने एक आत्म–तत्व को जाना और उन्हें परमात्म–तत्व की उपलब्धि हो सकी और इसीलिए इनकी संजीवनी–वाणी आहत घावों पर मरहम का काम कर सकी। किसी ने ठीक ही कहा है–

आग लगी आकाश में, जर परत अंगार।
संत न होत जगत में, जल जाता संसार।।

इस प्रकार संत काव्य–परम्परा की पृष्ठभूमि निश्चित रूप से भारतीय मनीषा के अनेक प्रस्थान–बिन्दु रचती है, जो धर्मनिरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता के सर्वश्रेष्ठ चिन्तन हैं। संत हमारी सांस्कृतिक चेतना के अग्रदूत हैं, जिन्होंने धर्मान्ध–आँधियों को अपने मानवीय संवेदन, समभाव और सहज–सौम्य से रोका है। संतों ने एक ऐसे समाज की परिकल्पना की थी जिसमें गृहस्थ–सन्यासी और संन्यासी–गृहस्थ हो अर्थात् सन्यास और गृहस्थ के मध्य की पारम्परिक दूरी समाप्त हो जाए। तलवार के दबाव में जनमत का दबाव अधिक शक्तिशाली होता है। तलवार के भय से साधुता ग्रहण करने वाले समाज को नहीं बदल सकते। आदर्श मनुष्य तो वही हो सकता है जिसने स्वेच्छा से साधुता का वरण किया हो, स्वेच्छा संचय का त्याग कर अपरिग्रही वृत्ति स्वीकार की हो। संतों ने ऐसे शोषणरहित समाज की परिकल्पना की थी जिसमें सबको समान सामाजिक आर्थिक, धार्मिक अधिकार प्राप्त हों परन्तु हर व्यक्ति अपने नागरिक कर्तव्यों के प्रति भी पूर्णतः सचेष्ट रहे। इनकी बहुमुखी प्रतिभा के संस्पर्श से मृतप्राय परम्परावादी मध्ययुगीन समाज की सूखी हड्डियों में भी नवजीवन का संचार हुआ था। इस संदर्भ में इन कवियों ने जिन आदर्शों को सामने रखा है, वे इतने उच्च गंभीर और सुदृढ़ हैं कि उनको अपना लेने पर हमारा समाज यथार्थ और गंभीर सामाजिक संगठन और कल्याणकारी जीवन की नींव डाल सकता है। इन आदर्शों को ग्रहण कर चलने वाले जीवन की प्रेरणा देने वाला तत्व आन्तरिक प्रेम और आध्यात्मिक एकता है। सर्वजनहितकारी आध्यात्मिक मूल्यों को आभार मानकर जन–कल्याण के लिए निर्गुणियाँ संतों ने समन्वयवादी समाज की परिकल्पना जन–मानस के समक्ष रखी।

संत–काव्य की पृष्ठभूमि में संत कवियों का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में संवेदनशील और उदार था, इसीलिए उनका साहित्य जन–भावनाओं की सहज प्रवृत्तियों, परिस्थितियों, विकृतियों और विडम्बनाओं से जूझने का प्रतिबिम्ब है। उनके काव्य मे तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्रण है। संत काव्य आत्मविश्वास, आशावाद और आस्था की भावना स्थापित करने में काफी सहायक रहा है। यह जीवन शक्ति का अजस्त्र–स्त्रोत रहा है और वह आज भी है। कबीर, नानक, बनारसीदास आदि के काव्य में त्रस्त, संतप्त, उपेक्षित, पीड़ित मानव को परिज्ञान प्रदान किया गया है। आचरण की पवित्रता, सात्विक साधना और कर्म–संस्कृति का संदेश लेकर ये संत कवि जनता के समक्ष उपस्थित हुए, इसीलिए ये मानव–समाज की राग–द्वेष, लोभ–मोह, मायामयी विकारपूर्ण स्थिति को ज्ञान, भक्ति, कर्म, योग, तप, आचार आदि के द्वारा दोषमुक्त कर सके हैं। उनकी रचनाओं में मानव की क्षुद्रता, संकीर्णता, स्वार्थपरकता, असत्यप्रियता,

अर्थ–लोलुपता, कामुकता, हिंसा आदि की जगह उदारता, सत्य, प्रेम, न्याय, अहिंसा, अपरिग्रह, क्षमा एवं दया आदि का आह्वान मिलता है। सामाजिक असंगति, धार्मिक उन्माद और धार्मिक गुत्थियों का समाधान मिलता है। संत कवि अपने समय और समाज के सजग प्रहरी रहे हैं, इसीलिए उनकी वाणी में सत्य का निरूपण, सत्य का विवेचन, सत्य का प्रचार–प्रसार दिखाई देता है। वही विश्वकाव्य और विश्व धर्म बनकर एवं हृदय की पवित्रता का आभूषण बनकर समाज के समक्ष प्रस्तुत हुआ है। उन्होंने कलुषित वासनाओं एवं राग–द्वेष से रहित सत्संगति, प्रभुनाम–स्मरण, जप औश्र तप तथा मन की एकाग्रता पर बल दिया है। संत–काव्य की पृष्ठभूमि में स्वानुभूति, निर्गुण रूप पर विश्वास, भक्ति और सत्य का अन्वेषण तथा वैराग्य मुख्य तत्व थे।

संदर्भ

1. भारतीय धर्म दर्शन का इतिहास– भाग–5, पृष्ठ 39, एस. एन. दासगुप्त तद्भव अंक–9 बजरंग विहारी के लेख से उद्घृत
2. संत साहित्य –डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, संस्करण 1995
3. युग और साहित्य– शान्तिप्रिय द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन,. इलाहाबाद, संस्करण 2000
4. लोकजागरण और हिन्दी साहित्य– डॉ रामविलास् शर्मा,
5. हिन्दी संत साहित्य –त्रिलोकी नारायण दीक्षित, अनग प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 1992
6. संत कबीर दर्शन– राजेन्द्र सिंह गौड़
7. हिन्दी काव्य में सर्वधर्म समभाव– संपादक डॉ. नगेन्द्र, प्रयाग प्रकाशन, संस्करण 2002

सहयोगी प्राध्यापक (हिन्दी–विभाग)
हुमात्मा जयवंतराव पाटील, महाविद्यालय
हिमायतनगर, जि. नांदेड़